छायावादी काव्य में नवजागरण की चेतना और स्वतंत्रता की आकांक्षा

रवि कुमार झा
शोधार्थी
हिन्दी विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली

शोध सारांश :
छायावादी काव्य में नवजागरण की चेतना और स्वतंत्रता की आकांक्षा निहित है। छायावाद केवल आत्माभिव्यक्ति, सौंदर्यबोध या रहस्यात्मकता का युग नहीं था, बल्कि यह युग राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक जागरूकता और औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध मानसिक प्रतिरोध की साहित्यिक अभिव्यक्ति भी था। जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा जैसे कवियों की रचनाओं में जहाँ एक ओर व्यक्ति की मुक्ति और आत्मान्वेषण की आकांक्षा है, वहीं दूसरी ओर स्वतंत्रता संग्राम के वैचारिक और सांस्कृतिक पक्ष भी उभरते हैं।

प्रसाद की कामायनी और आँसू, निराला की राम की शक्ति पूजा और शिवाजी का पत्र, महादेवी की जागरण कविताएँ तथा पंत की प्रकृति और मानव के समन्वय की कल्पना – इन सबमें स्वतंत्रता, चेतना, संघर्ष और परिवर्तन के स्वर स्पष्ट हैं। छायावादी काव्यधारा, नवजागरण की सामाजिक-सांस्कृतिक प्रवृत्तियों से जुड़कर साहित्य को केवल सौंदर्यलोक तक सीमित नहीं रखती, बल्कि वह जनचेतना, सामाजिक मुक्ति और राष्ट्रीय अस्मिता की सशक्त उद्घोषणा बन जाती है। अतः छायावाद एक साहित्यिक क्रांति है जो आत्मा से राष्ट्र तक की यात्रा को अभिव्यक्त करती है।

बीज शब्द - छायावाद,नवजागरण,स्वतंत्रता चेतना,राष्ट्रीय अस्मिता,मानव मुक्ति

प्रस्तावना:छायावाद हिंदी काव्य का वह महत्वपूर्ण युग है जिसमें व्यक्ति के आत्मबोध, सौंदर्यबोध और आध्यात्मिक चेतना के साथ-साथ राष्ट्रीय नवजागरण और स्वतंत्रता की आकांक्षा भी मुखर हुई। यह काल खंड मात्र भावुकता और प्रकृति-प्रेम का नहीं, बल्कि गहरे सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक आंदोलनों का साहित्यिक प्रतिबिंब भी है। प्रसाद, निराला, महादेवी और पंत जैसे रचनाकारों ने जहाँ आत्मचिंतन और सौंदर्य की अनुभूति दी, वहीं वे राष्ट्रीय अस्मिता, स्वतंत्रता की चेतना और सामाजिक मुक्ति के पक्षधर भी बने। है।

मूल शोध पत्र-छायावाद का समय मुख्यतः 1918 से 1936 तक माना जाता है। विश्वनाथ त्रिपाठी इसका परिचय देते हुए कहते हैं "छायावाद का उल्लेख 1920 के आसपास मिलने लगता है। शुक्ल जी इसे रवींद्रनाथ ठाकुर की कविताओं के प्रभाव से आया हुआ मानकर इसका संबंध ईसाई संतों के फैंटैसमाटा (छायाभास) शब्द से जोड़ते थे। उन्होंने छायावाद को चित्रभाषा-शैली भी कहा। पं. नंददुलारे वाजपेयी ने इसका संबंध युग-बोध से जोड़ते हुए भी इसे व्यक्त सौंदर्य में 'आध्यात्मिक छाया का भान' कहा। डॉ. नगेन्द्र ने छायावाद को 'स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का विद्रोह' माना। डॉ. नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक छायावाद में विश्वसनीय तौर पर दिखाया कि छायावाद वस्तुतः कई काव्य-प्रवृत्तियों का सामूहिक नाम है और वह 'उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति पाना चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से।" [1] छायावाद की रचनाओं में एक शक्ति है। नवजागरण की चेतना और स्वतंत्रता की आकांक्षा है।विश्वनाथ त्रिपाठी छायावाद को राष्ट्रीय स्वाधीनता एवं शक्ति का काव्य मानते हुए कहते हैं। "छायावाद साम्राज्यवाद विरोधी मानवतावादी काव्य-धारा है। वह व्यक्ति के सुख-दुःख का उदात्तीकरण करके उसे राष्ट्रीयता, अंतर्राष्ट्रीयता एवं सर्वात्मवाद तक पहुँचा देता है। प्रसाद ने आँसू के उत्तरार्ध में 'आँसू की घनीभूत पीड़ा' को 'दुःख दावा से दग्ध' विश्व की पीड़ा से जोड़कर इस जग के वृंदावन बन जाने की कामना की है। उनकी कामायनी शक्तिशाली और विजयी बनने का आह्वान करती है- शक्तिशाली हो विजयी बनो विश्व में गूँज रहा जयगान। 'निराला' ने शिवाजी का पत्र में मुगल शासन को साम्राज्यवादी कहा। राम की शक्ति पूजा में 'न्याय जिधर है उधर शक्ति' लिखकर अन्यायी और शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्यवाद से निपटने के लिए केवल धर्म, न्याय और विवेक को अपर्याप्त बताते हुए 'शक्ति की आराधना' का प्रस्ताव किया।"[2]

छायावादी काव्यों के भाव विचार राष्ट्रीय परिधि में बनें। रीतिकाल के शारीरिक मोह से आगे बढ़ कवित इतिवृत्तात्मकता के चोले को भी फेंक चुकी थी।छायावादी कवियों के सन्दर्भ में मुक्तिबोध लिखते हैं"छायावादी व्यक्तित्व एक विशेष प्रकार की भाव सघनता लेकर हमारे सामने उपस्थित हुआ। उसका साधारण मनोलोक असाधारण रूप से अन्तर्मुखी तथा सर्वसाधारण से बहुत दूर जा पड़ा। जिस पारिवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन की परिधि में उसके भाव विचार बने, वे अपने विषय के लिए उस ओर नहीं गए, वरन् उससे बहुत दूर और अत्यन्त मानसिक हो गए। वस्तु भी मानसिक हुई और उस पर प्रतिक्रिया भी मानसिक हुई। इस मानसिक वस्तु को बाह्य सन्दर्भों से जहाँ तक बन सका, दूर रखा गया। इस प्रकार उसे वायवीय स्थिति प्रदान की गई।"[3]उस दौर में देश और समाज में बहु स्तरीय काम हो रहें थें, नवजागरण मजबूत हो रहा था।

"इसमें कोई शक नहीं कि स्वतंत्रता संग्राम की उफनती हिलोरें लेती इस महानदी में बहुत सी अन्य धाराएँ भी आकर मिलती थीं और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस इसकी मुख्यधारा तो थी लेकिन वह अकेली धारा नहीं थी।"[4] इस समय कर तरह के सामाजिक आंदोलन हुए। मुक्ति की आकांक्षा प्रबल हो गई थी।"इसका नतीजा यह हुआ कि इसने अन्य आधुनिक मुक्ति आन्दोलनों के लिए जगह बनाई और उनके साथ अपने को जोड़ा। ये आन्दोलन थे, महिलाओं के आन्दोलन, नवजवानों, किसानों, मजदूरों, हरिजनों और अन्य निचली जातियों के आन्दोलन। उदाहरण के लिए 19वीं शताब्दी के दौरान भारतीय संस्कृति के उपनिवेशीकरण के खिलाफ रक्षात्मक रूप में जो सामाजिक और सांस्कृतिक आन्दोलन विकसित हुए, वे सबके सब आकर राष्ट्रीय आन्दोलन में एकाकार हो गए।"[5].

छायावादी समय में समाज के स्तर पर समाज की जागृति भी हो रही थी और स्वाधीनता की मांग भी प्रबल हो रही थी।"दो शब्द यहाँ नवजागरण और स्वाधीनता आन्दोलन के सम्बन्धों पर कहना आवश्यक है। किसी देश या उसके प्रदेश के सामाजिक सांस्कृतिक आन्दोलन को हम नवजागरण कहते हैं। इसमें सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के प्रयत्न शामिल हैं। शूद्रों और स्त्रियों की स्थिति को बदलने के प्रयत्न नवजागरण के अंग है। धार्मिक सुधार, अंधविश्वासों के विरुद्ध प्रचार नवजागरण के अन्तर्गत हैं। शिक्षा-प्रसार, साहित्य-रचना जैसे

कार्य तो उसके अन्तर्गत है ही। स्वाधीनता आन्दोलन विदेशी प्रभुत्व के विरुद्ध चलाया हुआ राजनीतिक आन्दोलन है। वह नवजागरण का एक भाग है, उसका पर्याय नहीं। वह नवजागरण को प्रेरित कर सकता है, उसमें घुल-मिल सकता है पर उसका स्थान नहीं ले सकता। स्वाधीनता आन्दोलन के बिना भी नवजागरण सम्भव है, पर यह उच्च वर्गों तक सीमित रहेगा, वह समाज को बड़े पैमाने पर प्रभावित न कर सकेगा। इसके विपरीत उच्च वर्गों के नेतृत्व में चलने वाला स्वाधीनता आन्दोलन भी, नवजागरण के स्पष्ट उद्देश्य सामने न रखने पर भी बड़े पैमाने पर उन उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होगा। इस प्रकार सन् 1920-21 का असहयोग आन्दोलन हिन्दी प्रदेश में पर्दा प्रथा को दूर करने में सहायक हुआ। मध्यवर्ग के पढे-लिखे लोग जितना ही स्वाधीनता आन्दोलन में भाग लेंगे, उतना ही वे नवजागरण को व्यापक बनाएँगे। नवजागरण यदि समाज में मौलिक परिवर्तन का उद्देश्य लेकर चलेगा तो वह स्वाधीनता आन्दोलन की प्रेरक शक्ति बनेगा।"[6].

रामविलास शर्मा भारतीय नवजागरण पर वृहद बात करते है, भारतीय समाज के संदर्भ में इसके जातीय स्वरूप की पड़ताल वो करते हैं। वो कहते हैं "कोई भी नवजागरण हो उसका जातीय स्वरूप अवश्य होगा। सामन्ती सम्बन्धों से बाहर निकलते हुए जन-समाज जातियों के रूप में गठित होते हैं। जातीय जागरण को ही अक्सर नवजागरण कहा जाता है। इस प्रकार हर नवजागरण जातीय गठन और विकास में सहायक होता है। सम्प्रदाय तक नवजागरण को सीमित किया जाए तो वह जातीय गठन और विकास में बाधक होगा। राजा राममोहन राय और सर सैयद अहमद खाँ के नवजागरण हिन्दुओं और मुसलमानों तक सीमित थे, इस हद तक वे बंगाली और हिन्दी जातियों के गठन के विकास में बाधक थे। आर्य समाज के आन्दोलन को भी साम्प्रदायिक रूप देकर उसके क्रान्तिकारी तेज को नष्ट किया जा सकता है। पर स्वामी दयानन्द ने सभी धर्मों की रूढ़ियों पर प्रहार किया था, उनका यह कार्य कबीर की परम्परा के अनुरूप था। कबीर पंथ की आलोचना के बावजूद उनके और कबीर के तर्कों और उनकी तर्कशैली में भी बहुत बड़ी समानता है। यह तर्क शैली मनुष्य को स्वतंत्र चिन्तन की ओर ले जाने वाली थी।"[7].

नवजागरण के साथ स्वदेशी की भी भावना जागृत हुई। लोग हर स्वदेशी विचार से लेकर स्वदेशी वस्तु तक अपनाने की चेष्टा बढ़ने लगी। "बौद्धिकों में पश्चिमी सभ्यता की नकल की जो प्रवृत्ति बढ़ी उसकी चिन्ता और आलोचना भारतीय नवजागरण के निर्माताओं ने की है। सप्रे जी भी अनुकरण की प्रवृत्ति के बारे में चिन्तित हैं। वे कहते हैं कि-'पश्चिम की विद्या और सभ्यता की कुंजी मिल जाने पर भी, सोचिए तो सही, हम लोग पश्चिमी देशों के तत्ववेत्ताओं के सिद्धान्तों का आकलन करने में कितने सफल हुए हैं? हम विदेशियों की सभ्यता का बाहरी अनुकरण करने से ही सन्तुष्ट है। ऐसी चिन्ता बंगाल में थी और महाराष्ट्र में भी। माधवराव सप्रे पश्चिमी सभ्यता के उतने विरोधी नहीं हैं जितने अंधानुकरण के।"[8]

इस समय परम्परा और आधुनिकता का द्वंद चल रहा था।"परम्पराओं के बंधन टूटने से जो भावनात्मक संकट समाज में उत्पन्न हुआ, उसने पुरुषों और महिलाओं को कुछ समय तक अजीब से असमंजस में डाले रखा। इन सुधारों को लेकर लोगों में तरह-तरह की प्रतिक्रियाएँ हुई। बंगाल में जब पहला विधवा-विवाह हुआ, तो उत्सुकतावश हजारों लोग इसे देखने के लिए जुटे। इसी तरह महाराष्ट्र में हुए पहले विधवा-विवाह में जुटी भीड़ ने उग्र रूप धारण कर लिया, तो पुलिस को आत्मरक्षार्थ लाठी चार्ज करना पड़ा। रूक्माबाई ने अपने अशिक्षित और अकर्मण्य पति को स्वीकारने से इनकार कर दिया। इस मुद्दे को लेकर तूफान खड़ा हो गया। अपनी इच्छा के विरुद्ध जब राना डे को एक युवा लड़की से शादी करने पर मजबूर होना पड़ा, तो कई रातें उन्होंने अन्तर्द्वन्द्व में जागते हुए गुजारी। लोकहितवादी गोपालहरि देशमुख, तैलंग और दूसरे कई लोगों का भी यही हाल था, जो एक दोराहे पर खड़े थे एक तरफ परम्पराएँ थी, तो दूसरी तरफ प्रतिबद्धता। यह अन्तर्द्वन्द्व हरेक के मन में उथल-पुथल मचा रहा था। बहुत से लोग अन्ततः परम्पराओं की ओर वापस लौट भी गए लेकिन फिर भी इस संघर्ष से भारत में नया आदमी और नया समाज जरूर उभरा।"[9] 'स्वाधीन' शब्द छायावादी कवि के शब्दकोश में सबसे महत्वपूर्ण है। इस शब्द के बराबर कोई और शब्द नहीं है। वो कहते हैं-

"माया नहीं जानता मैं-
जानता हूँ एक बस स्वाधीन शब्द।
बहती है समीर
पुष्प के शून्य उर में लेती स्वाधीन साँस
पाती है सुरभि, स्वाधीन गति
आवर्तन-परिवर्तन-नर्तन
सुख कीर्तन में विपुल उल्लास मय विश्व के कण-कण में
एक स्वाधीनता का गूँजता है विपुल हर्ष"[10]

राष्ट्रीय चेतना प्रसाद जी की कविता में सबसे प्रबल रूप में है।"प्रसाद जी को समाज और जाति ने, अर्थात् आधुनिक जीवन जगत ने, जो दृष्टि प्रदान की वह थी राष्ट्रवादी सांस्कृतिक अभ्युथान से प्रेरित। प्रसाद जी ने अतीत के गौरवमय चित्र उपस्थित कर इस राष्ट्रीय सांस्कृतिक अभ्युधान में योग दिया। ... प्रसाद जी ने अतीत की भावुक गौरव-छायाओं से ग्रस्त, वेदोपनिषदिक आर्ष वातावरण से अनुप्राणित, समाजदर्श से प्रेरित होकर अपनी विश्वदृष्टि तैयार की। यह विश्वदृष्टि कामायनी में प्रकट हुई।"[11]उनकी कविताएं राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष के नारा प्रतीत होता है। एक उदघोष जैसा है।

"अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।।
सरल तामरस गर्भ विभा पर, नाच रही तरुशिखा मनोहर।
छिटका जीवन हरियाली पर, मंगल कुंकुम सारा।।"[12]

पंत की समस्त रचना भारतीय संस्कृति और समाज से साक्षात्कार करती हुई प्रतीत होती है। भारत माता की परिकल्पना को पुष्ट करती इनकी कविता जिसके आधार पर आजादी बाद लिखा रेणु जी का मशहूर आंचलिक उपन्यास 'मैला आंचल' का शीर्षक दिया है,में दृष्टिगोचर है कि भारत छोटा नाम नहीं है, विराट है भारत दूर सुदूर हर गांव में निवास करता है।

"भारत माता ग्रामवासिनी
खेतों में फैला है श्यामल
धूल भरा मैला सा आँचल
गंगा यमुना में आँसू जल
मिट्टी कि प्रतिमा/उदासिनी।/दैन्य जड़ित
अपलक नत चितवन
अधरों में चिर नीरव रोदन
युग-युग के तम से विषण्ण मन
यह अपने घर में/प्रवासिनी।"[13].

अतीत यदि गौरवशाली हो तो उसका भान इंसान को आत्मविश्वास देता है कि वो व्यक्ति को अपनी स्थिति बेहतर करने के लिए प्रेरणा प्रदान करता है।

"बुद्धि, मनीषा, मति, आशा, चिन्ता तेरे है कितने नाम।
अरी पाप है तू जा चल जा यहाँ नहीं कुछ तेरा काम।
विस्मृति आ,अवसाद घेर ले नीरवते बस चुप कर दे
चेतनता चल जा, जड़ता से आज शून्य मेरा भर दे।"[14].

छायावादी कवि मनुष्य की स्वतंत्रता की मांग करते हैं,मुक्ति की चाह रखते हैं,यह मुक्ति की चाह मात्रा मनुष्य तक सीमित नहीं है। ये कला और साहित्य में भी मुक्ति चाहते हैं।"मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है... मनुष्यों की मुक्ति का अर्थ है कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना और कविता की मुक्ति का अर्थ है छन्दों के शासन से अलग हो जाना। ... छन्दों के शासन से मुक्त काव्य के द्वारा साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है।"[15].

छायावादी कवि सबको जगाना चाहते हैं।भारतीय समाज की चेतना को जागृत करना चाहते है, इनकी कविताओं में 'जाग' जैसे शब्द बार बार आते हैं।महादेवी वर्मा की कविता 'जाग तुझको दर जाना' और 'जाग बेसुध जाग' में जगाने की चेष्टा है। महादेवी कठिन संघर्ष के समय श्रीकृष्ण को याद करती हैं,जो शंख लेकर सबको जगाएंगे।

"शंख में ले नाश मुरली में छिपा वरदान,
दृष्टि में जीवन अधर में सृष्टि ले छविमान,
आ रचा जिसने स्वरों में प्यार का संसार
गूँजती प्रतिध्यनि उसी की फिर क्षितिज के पार,
वृन्दा बिपिन वाले जाग।"[16].

गुलाम भारत के छायावादी कवि स्वयं देश की स्थिति से विचलित हैं,वो देशवासियों को देश की जिम्मेदारी लेने के लिए प्रेरित करते हैं।

"कौन लेगा भार यह ?/कौन विचलेगा नहीं ?
दुर्बलता इस अस्थिमांस की -
ठोंक कर लोहे से,परख कर वज्र से,
प्रलयोल्का खंड के निकष पर कस कर
चूर्ण अस्थि पुंज सा हँसेगा अट्टहास कौन?
साधना पिशाचों की बिखर चूर-चूर होके
धूलि सी उड़ेगी किस दृप्त फूत्कार से?"[17].

1936 की कालजयी रचना 'राम की शक्तिपूजा' के राम स्वयं निराला है, एक गुलाम देश के युवक जो अपनी विषम परिस्थिति को बदलने के लिए तत्पर है।

"रावण अशुद्ध होकर भी यदि कर सका त्रस्त
तो निश्चय तुम हो सिद्ध करोगे उसे ध्वस्त
शक्ति की करो मौलिक कल्पना
करो पूजन छोड़ दो समर जब तक न सिद्धि हो रघुनंदन!"[18]

छायावादी कवि को अपने जीवन की असफलताएँ, कटु अनुभव,विद्वेष, प्रताड़ना और कुचक्र का सामना करना पड़ा है। उसके कारण कवि के मन में निराशा और विषाद सघन हो गया है। कवि इससे ऊब गया है।वो ऐसी परिस्थिति चाहता है, जहां सब अच्छा हो।

"ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे-धीरे
जिस निर्जन में सागर-लहरी अम्बर के कानों में गहरी
निश्चल प्रेम कथा कहती हो तज कोलाहल की अवनी रे।"[19].

वो कल्पना कर रहे हैं कि सब अच्छा हो।देश गुलामी के जाल से बाहर निकले। देश - समाज जागृत हो। छायावादी काव्यधारा केवल भावुकता, सौंदर्यबोध और आत्मचिंतन तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह युग भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक नवजागरण की गहन चेतना से भी अनुप्राणित था। छायावादी कवियों ने अपने अंतर्मन की पीड़ा, स्वतंत्रता की उत्कंठा और सामाजिक बंधनों से मुक्ति की आकांक्षा को कविता के माध्यम से प्रकट किया। जयशंकर प्रसाद की कामायनी, निराला की राम की शक्ति पूजा, पंत की मानवतावादी दृष्टि और महादेवी वर्मा की चेतना-जागरण की पुकार इन कवियों की राष्ट्रीय और सांस्कृतिक प्रतिबद्धता का सशक्त प्रमाण हैं। ये रचनाएँ न केवल उपनिवेशी मानसिकता के विरोध में थीं, बल्कि एक आत्मनिर्भर, संवेदनशील और स्वतंत्र भारत के स्वप्न को भी अभिव्यक्त करती थीं।

आज जब भारत वैश्वीकरण, तकनीकी विकास और सामाजिक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है, तब छायावाद की चेतना हमें याद दिलाती है कि सच्चा नवजागरण आत्मचेतना, सांस्कृतिक स्वाभिमान और समावेशी स्वतंत्रता में निहित होता है। वर्तमान समय में जब सामाजिक बिखराव, सांस्कृतिक विस्मृति और मूल्य संकट सामने हैं, तब छायावाद का यह आंतरिक आलोक पुनः प्रेरणा का स्रोत बन सकता है—एक जाग्रत, संवेदनशील और स्वतंत्र समाज के निर्माण हेतु। आज भी इसकी प्रासंगिकता दृष्टिगोचर है।

****

संदर्भ सूची -

1. विश्वनाथ त्रिपाठी : हिंदी साहित्य का सरल इतिहास ; पृष्ठ 127–128, संख्या-01, ओरिएंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद; संस्करण : 2018
2. विश्वनाथ त्रिपाठी : हिंदी साहित्य का सरल इतिहास ; पृष्ठ 130, संख्या-02, ओरिएंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद; संस्करण : 2018
3. कथादेश (अक्तूबर अंक) ;पृष्ठ 62,संख्या-03, कथादेश प्रकाशन, नई दिल्ली; अंक : 2004
4. बिपिनचन्द्र : भारत का स्वतंत्रता संघर्ष ; पृष्ठ 31, संख्या-04, भारत;
5. बिपिनचन्द्र : भारत का स्वतंत्रता संघर्ष (भूमिका) ; पृष्ठ 32, संख्या-05, भारत;
6. रामविलास शर्मा : स्वाधीनता संग्राम बदलते परिप्रेक्ष्य ; पृष्ठ 121, संख्या-06, भारत;
7. रामविलास शर्मा : स्वाधीनता संग्राम बदलते परिप्रेक्ष्य ; पृष्ठ 121–122, संख्या-07, भारत;
8. विजयदत्त श्रीधर (संस्थापक संयोजक) : माधवराव सप्रे का महत्व (पुस्तिका) ; पृष्ठ 15, संख्या-08, भारत;
9. बिपिनचन्द्र : भारत का स्वतंत्रता संघर्ष ; पृष्ठ 59, संख्या-09, भारत;
10. नंद किशोर नवल (सं.) : निराला रचनावली, भाग-1 ; पृष्ठ 132, संख्या-10, भारत;
11. नेमिचन्द्र जैन (सं.) : मुक्तिबोध रचनावली, भाग-4 ; पृष्ठ 201, संख्या-11, भारत;
12. जयशंकर प्रसाद : चंद्रगुप्त ; पृष्ठ 92, संख्या-12, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद; संस्करण : 1958
13. प्रसाद ,निराला, पंत महादेवी की सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ प्रस्तुतकर्ता - वाचस्पति पाठक, लोकभारती प्रकाशन, अठारहवाँ संस्करण-2002, पृ. 172
14. सत्यप्रकाश मिश्र (सं.) : प्रसाद का सम्पूर्ण काव्य ; पृष्ठ 416, संख्या-14, भारत;
15. नंद किशोर नवल (सं.) : निराला रचनावली, भाग-1 ; पृष्ठ 425, संख्या-15, भारत;
16. महादेवी वर्मा : संधिनी ; पृष्ठ 98, संख्या-16, भारत;
17. जयशंकर प्रसाद : पेशोला की प्रतिध्वनि ; http://kavitakosh.org (ऑनलाइन स्रोत);
18. रमेश चंद्र शाह (सं.) : निराला संचितिता ; पृष्ठ 97, संख्या-18, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण : 2010
19. जयशंकर प्रसाद : लहर ; पृष्ठ 14, संख्या-19, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी; संस्करण : 1992